पदार्थों की इच्छा करना भी इतना अधम है कि इसके पूर्व आत्महत्या कर लेना अधिक अच्छा होगा।'' ये सब अन्तःकरण की शुद्धि के साधन हैं।

अगला गुण है **ज्ञानयोगव्यवस्थितिः**—ज्ञान के अनुशीलन में तत्पर रहना। संन्यास लेने का उद्देश्य उन गृहस्थ आदि मनुष्यों में ज्ञान का प्रसार करना है, जिन्हें जीवन के यथार्थ लक्ष्य—परमार्थ का विस्मरण हो गया है। संन्यासी के लिए विधान है कि वह द्वार-द्वार पर जाकर मधुकरी करे। इसका अर्थ यह नहीं कि वह भिखारी है। दैवी प्रकृति में स्थित पुरुष का एक लक्षण दैन्य (विनम्रता) है। दीन संन्यासी द्वार-द्वार पर जाता है। उसका उद्देश्य भिक्षा माँगना नहीं है, वह गृहस्थी को दर्शन देकर उनकी सुप्त कृष्णभावना को जागृत करने के लिए ही जाता है। संन्यासी का यह एक प्रधान कर्तव्य है। यदि वह उन्नति कर चुका है, तो गुरुदेव की आज्ञानुसार संन्यास लेकर युक्ति और विवेक के साथ कृष्णभावना का प्रचार करे; परन्तु अध्यात्म में उन्नति के बिना संन्यास न ले। पर्याप्त ज्ञानी न होने पर भी यदि उसने संन्यास ग्रहण कर लिया है, तो ज्ञान-प्राप्ति के लिए पूर्ण रूप से प्रामाणिक गुरु को सुनने के परायण हो जाय। इस प्रकार संन्यासी के लिए अभय, सत्त्वसंशुद्धि (आत्मशुद्धि) तथा ज्ञान, ये तीनों गुण अनिवार्य हैं।

दानम् का विशेष अभिप्राय गृहस्थों से है। गृहस्थों को चाहिए कि न्यायपूर्वक धन का अर्जन करें और अपनी आय का पचास प्रतिशत सम्पूर्ण विश्व में कृष्णभावना के प्रचार के लिए दान में लगाऐं। ऐसा करने वाले संघ की सब प्रकार से सहायता करना गृहस्थ का प्रधान कर्तव्य है। दान सत्पात्र को ही करना चाहिए। देश, काल और पात्र के अनुसार दान के सत्त्वगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी भेद हैं। शास्त्रों में केवल सत्त्वगुणी दान का विधान है, जबकि राजसी अथवा तामसी दान तो धन का अपव्यय है। दान केवल विश्व में कृष्णभावना के प्रचार के लिए करना चाहिए। यही सात्त्विक दान है।

दमः अर्थात् इन्द्रिय-संयम भी गृहस्थों का विशेष कर्तव्य है। गृहिणी के साथ रहते हुए भी अनावश्यक इन्द्रिय-तृप्ति में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। उसके लिए बहुत से विधि-निषेध हैं, जिनमें एक यह है कि संतान उत्पत्ति के लिए ही संभोग में प्रवृत्त हो। यदि संतान की इच्छा न हो, तो स्त्री-संभोग करे ही नहीं। दुर्भाग्यवंश, शास्त्र की आज्ञा का पालन करने के स्थान पर आधुनिक समाज बालकों के उत्तरदायित्व से बचने के लिए निरोध, गर्भपात जैसे आसुरी साधनों की सहायता से अमर्यादित संभोग करता है। यह निश्चित रूप से आसुरी गुण है। यदि कोई मनुष्य, चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हो, परमार्थ में उन्नति का अभिलाषी हो, तो उसके लिए अपने काम-विचार का संयम करना अनिवार्य है; श्रीकृष्ण की सेवा के उद्देश्य के बिना संतान को जन्म न दे। यदि किसी में कृष्णभावना के योग्य बालकों को जन्म देने की क्षमता है, तो वह कितने भी बालक उत्पन्न कर सकता है; परन्तु इस योग्यता के बिना केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए प्रवृत्त न हो।